दो टूक

रीतिका खेड़ा
परिदृश्य
edit@amarujala.com

घेरे से बाहर

खाद्य सुरक्षा कानून में 'प्राथमिकता' बीपीएल का ही दूसरा नाम है!

लंबी जद्दोजहद के बाद लोकसभा में खाद्य सुरक्षा विधेयक पेश किया गया। यूपीए सरकार की इस महत्वाकांक्षी योजना का जो मसौदा कैबिनेट ने पास किया है, वह कई सवालों को जन्म देता है। कहा जा रहा है कि 75 फीसदी ग्रामीण आबादी को इससे लाभ मिलेगा। मगर यह साफ नहीं किया जा रहा कि वास्तव में सबसिडी को 'प्राथमिकता' वाले परिवारों तक सीमित किया जा रहा है।

मसौदे के अनुसार, सिर्फ प्राथमिकता प्राप्त परिवार ही सस्ते अनाज के हकदार होंगे (यानी, तीन रुपये प्रति किलो चावल, दो रुपये प्रति किलो गेहूं या एक रुपये प्रति किलो मोटा अनाज)। ग्रामीण क्षेत्रों में 46 फीसदी परिवार ही 'प्राथमिक' होंगे। 75 प्रतिशत नहीं। बाकी के 29 फीसदी परिवार 'सामान्य' सूची में रखे जाएंगे और 25 फीसदी कानून के दायरे से बाहर होंगे। सामान्य परिवारों को तीन किलो प्रति व्यक्ति अनाज मिलेगा। इसकी दर न्यूनतम समर्थन मूल्य से आधे दाम पर, कमोबेश बाजार मूल्य के बराबर होगी।

शहरी क्षेत्रों में भी पचास फीसदी आबादी इसके दायरे से बाहर रहेगी, जबकि 28 प्रतिशत प्राथमिकता सूची में शामिल होंगी और शेष 22 फीसदी लोग सामान्य परिवारों में गिने जाएंगे, जो सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) से बाहर होंगे। गौर किया जाए कि ग्रामीण (46 फीसदी) और शहरी (28 फीसदी) क्षेत्रों के प्राथमिकता सूची का आंकड़ा तेंदुलकर कमेटी द्वारा तय गरीबों की संख्या के आसपास पहुंचता है। यानी, इस कानून में बीपीएल परिवारों को नया नाम दिया गया है - प्राथमिक परिवार। और एपीएल अब सामान्य कहलाएंगे।

ऐसा लगता है कि सरकार, और मीडिया भी, यह भूल गए हैं कि विगत अक्तूबर में ही सुप्रीम कोर्ट में दाखिल योजना आयोग के हलफनामे ने गरीबी रेखा के औचित्य को लेकर तीखी बहस छेड़ दी थी। इसमें आयोग ने शहरी क्षेत्रों में 32 रुपये और ग्रामीण क्षेत्रों में 26 रुपये रोजाना खर्च को 'गरीबी रेखा' बताया था। इस विवादित हलफनामे में कहा गया था कि यह गरीबी रेखा 'भोजन, शिक्षा और स्वास्थ्य' की जरूरतों के वास्तविक खर्च की उपयुक्तता सुनिश्चित करती है।

सरकारी गोदामों में क्षमता से अधिक रखे गए खाद्यान्न का इस्तेमाल पीडीएस में क्यों नहीं किया जा सकता?

गरीबी की इस परिभाषा को लेकर जारी बहस तब थमी, जब योजना आयोग के उपाध्यक्ष और ग्रामीण विकास मंत्री ने संयुक्त बयान जारी किया। वह बयान यह साफ नहीं कर पाया कि योजना आयोग द्वारा तय गरीबी रेखा वंचितों के लिए चल रही कल्याणकारी योजनाओं के लिए प्रासंगिक है, और उसकी सीमा क्या है। सरकार ने यह तो स्पष्ट किया कि वह क्या नहीं करेगी, मगर वह क्या करने वाली है, यह तब रहस्य रहा।

वह संयुक्त बयान भले ही मीडिया में चल रही बहस को शांत करने में सफल रहा, पर योजना आयोग के इस हस्तक्षेप को वास्तविकता से टाल-मटोल करने, दोतरफा बातें बोलने और पलायन करने के रूप में देखा जाना चाहिए। मसलन, योजना आयोग के उपाध्यक्ष ने कहा कि मध्याह्न भोजन योजना, समन्वित बाल विकास सेवा (आईसीडीएस), मनरेगा जैसी कल्याणकारी योजनाएं गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों तक सीमित नहीं हैं। उन्होंने बड़ी सरलता से उन लक्षित योजनओं के नाम नहीं लिए, जो गरीबी रेखा के निर्धारण से प्रभावित होती हैं। जैसे पीडीएस, राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना, विधवा और वृद्धावस्था पेंशन और कुछ हद तक इंदिरा आवास योजना।

विगत मई में 40 अर्थशास्त्रियों ने राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् की अध्यक्ष सोनिया गांधी को पत्र लिखकर गुजारिश की थी कि खाद्य सुरक्षा कानून को तकरीबन सार्वभौमिक बनाया जाए। पिछले दिनों ही सर्वोच्च न्यायालय ने 'भोजन का अधिकार' मामले के दौरान बढ़ते खाद्य भंडारण और उसके रख-रखाव में आ रही परेशानियों को लेकर केंद्र सरकार से सवाल किया था। याचिकाकर्ताओं ने मांग की थी कि गोदामों में क्षमता से अधिक रखे गए खाद्यान्न का इस्तेमाल पीडीएस में किया जाए, ताकि अधिक से अधिक गरीब परिवारों को लाभ मिले। जैसे, अत्यधिक गरीब दो सौ जिलों में सभी को जनवितरण प्रणाली का लाभ दे दिया जाए। यह महसूस किया गया कि पलामू, कालाहांडी, सरगुजा जैसे अत्यधिक गरीब जिलों में, जहां 80 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा के नीचे है, गरीबी जनगणना औचित्यहीन होगी, लिहाजा एक अंतरिम मानक बनाकर सभी को यह दे दिया जाए।

गरीबी जनगणना से गरीबों को बाहर रखने के सुबूत और सार्वभौमिक स्तर पर अनाज वितरण को लागू करने की व्यापक सहमति के बावजूद जन वितरण व्यवस्था का लाभ सभी को देने में सरकार क्यों असहमत है, यह समझना मुश्किल है। खाद्य सुरक्षा कानून लागू करने में होने वाले खर्च पर आवाज उठाने वाले यह भूल जाते हैं कि सरकार के पास अनाज का हद से ज्यादा भंडार है। सरकार दो वजहों से अनाज खरीदती है- पहला जन वितरण व्यवस्था के लिए और दूसरा, खुले बाजार में बेचकर खाद्यान्न की कीमत नियंत्रित करने के लिए। बढ़ती महंगाई के दौर में सरकार जन वितरण व्यवस्था का विस्तार कर अथवा बाजार में खाद्यान्न की आपूर्ति बढ़ाकर, गरीबों को राहत दे सकती है।

पीडीएस के संदर्भ में यह भी एक सच है कि तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और राजस्थान जैसी कई राज्य सरकारों ने इसका दायरा योजना आयोग की गरीबी रेखा से प्राप्त गरीबी दर से बढ़ाया है। लिहाजा सरकार और स्थायी समिति जब भी खाद्य सुरक्षा कानून पर बहस करें, तो इन पहलुओं का अवश्य ध्यान रखें।

आमने-सामने सत्ता और सेना

कुलदीप तलवार

बीच बहस में

पाकिस्तान की राजनीति रोज करवट ले रही है। हाल ही में तहरीक-ए-इंसाफ के मुखिया इमरान खान पाकिस्तान में नई उम्मीद बनकर उभर रहे हैं। बताया यह भी जा रहा है कि उन्हें सेना का समर्थन मिल रहा है। अल कायदा सरगना ओसामा बिन लादेन के मारे जाने के बाद से ही पाक सरकार और सेना के बीच रिश्ते सामान्य नहीं हैं। लादेन के मारे जाने के बाद सेना ने सरकार पर उंगली उठाई थी। जरदारी को डर था कि कहीं सेना उनकी सरकार का तख्ता न पलट दे। इस आशंका के तहत जरदारी ने अमेरिका से मदद मांगने के लिए एक गोपनीय पत्र (मेमोगेट) अमेरिका में पाक के तत्कालीन राजदूत हुसैन हक्कानी को कहकर पाकिस्तान के अमेरिकी कारोबारी मंसूर एजाज के जरिये अमेरिकी सेना प्रमुख को पहुंचाया था।

उस रहस्योद्घाटन के बाद पाक राजनीति में भूचाल आ गया, जो अब भी थमने का नाम नहीं ले रहा। इस मामले में सुप्रीम कोर्ट में दायर अपने हलफनामे में कयानी के नजदीकी रक्षा सचिव ने कहा है कि सरकार के पास सेना और आईएसआई पर अंकुश लगाने का कोई अधिकार नहीं है। दूसरी ओर प्रधानमंत्री गिलानी ने पिछले दिनों आईएसआई के मुखिया शुजा पाशा को सख्त लहजे में याद दिलाया कि मेमोगेट के बारे में कोई जानकारी उन्हें सेनाध्यक्ष से साझा करने के बजाय सरकार से साझा करनी चाहिए थी। गरज यह कि सेना और सरकार, दोनों ने एक दूसरे के खिलाफ जंग छेड़ दी है, और न्यायपालिका भी इसमें जरदारी के खिलाफ है। उसने जरदारी को कहा है कि अपने पद की आड़ लेकर वह अदालत में व्यक्तिगत पेशी से बच नहीं सकते।

दरअसल इस मामले का सीधा संबंध देश की स्वतंत्रता और संप्रभुता की रक्षा से है, इसलिए अगर यह साबित हो गया कि उक्त गोपनीय पत्र जरदारी के आदेश पर अमेरिकी प्रशासन को सौंपा गया था, तो उनके खिलाफ देशद्रोह का मुकदमा भी दर्ज हो सकता है। एक नए घटनाक्रम के तहत बेनजीर भुट्टो की पुण्यतिथि पर सिंध के गढ़ी खुदाबख्श में आयोजित एक समारोह में राष्ट्रपति ने पूर्व गृह मंत्री ऐतजाज एहसान को ज्यादा महत्व दिया, तो यह अफवाह शुरू हो गई कि जरदारी गिलानी की जगह एहसान को नया प्रधानमंत्री बना सकते हैं।

पाकिस्तान में अमेरिका-विरोधी माहौल में कहीं कोई कमी नहीं आई है। पिछले महीने नाटो फौज द्वारा पाक की चेकपोस्ट पर हमले के बाद पाक जनता ने अपनी सरकार पर जोर डाला था कि वह अमेरिका से सभी तरह के संबंध खत्म करे। उसके बाद पाकिस्तान ने अफगानिस्तान में तैनात नाटो फौजों के लिए पाक के रास्ते जारी आपूर्ति पर पाबंदी लगाने के अलावा बलूचिस्तान स्थित शम्सी एयरबेस को खाली करा लिया था। अफगानिस्तान मुद्दे पर बॉन में हुई बैठक का भी इसलामाबाद ने बहिष्कार किया। हालांकि हाल ही में ओबामा प्रशासन ने उसके प्रति नरमी दिखाई है। इसके बावजूद पाक जनता, खासकर कट्टरपंथियों का, गुस्सा ठंडा नहीं हुआ। मुंबई हमले के जिम्मेदार जमात-उद-दावा ने पाक को तालिबानी देश में बदलने की धमकी देने के अलावा अमेरिका और भारत से हर तरह के संबंध खत्म करने की मांग की है।

पाक राष्ट्रपति आसिफ जरदारी ऑपरेशन ओसामा, मेमोगेट घोटाले और नाटो फौजों द्वारा पाक चैकपोस्टों पर हमले के बाद से ही सख्त जेहनी दबाव और परेशानी का सामना कर रहे थे। देश के हालात ने भी कुछ ऐसा रुख अख्तियार किया, जिस कारण वह अपनी फौज और जनता से आंख नहीं मिला पा रहे थे। हालांकि पाक सत्ता प्रतिष्ठान अब सेना के खिलाफ सख्त है, लेकिन मेमोगेट कांड व नेशनल रिकन्सीलिएशन ऑर्डर (एनआरओ) पर प्रत्याशित फैसले और लादेन के मारे जाने की जांच कर रहे एबटाबाद आयोग की रिपोर्ट जारी होने के मद्देनजर जरदारी की मुश्किलें बढ़ गई हैं। वैसे तो कयानी और शुजा पाशा को हटाने की खबरें हैं, लेकिन कोई ऐसा रास्ता तलाश किया जा रहा है, जिससे फौज और पाक जनता को जरदारी से छुटकारा मिल जाए और उनकी जगह पार्टी का ही कोई नेता या साफ-सुथरी छवि वाला दूसरा शख्स उनकी जगह ले। इस तरह लोकतांत्रिक सरकार का भ्रम भी बना रहेगा जिसकी अवधि 2013 में खत्म हो रही है। अगले चंद दिन पाक की राजनीति में बहुत महत्वपूर्ण हैं। निकट भविष्य में कुछ भी हो सकता है।

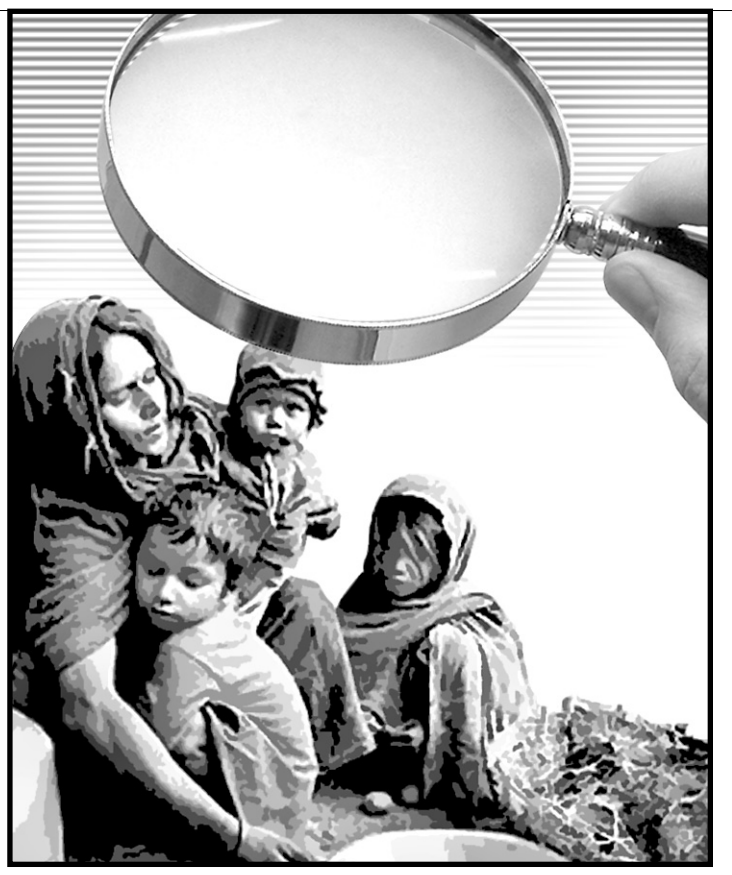

संपादकीय

अमर उजाला

जापान से मजबूत होते रिश्ते

जब अपने यहां परमाणु परियोजनाओं के विरोधी अचानक एकजुट होते दिखाई दे रहे हैं, तब असैन्य परमाणु समझौते को मूर्त रूप देने के लिए जापान के प्रधानमंत्री योसोहिका नोदा के भारत आने का सचमुच महत्व है। फुकुशिमा हादसे के नौ महीने बाद ही सही, जापान को इस समझौते की याद तो आई। परमाणविक क्षेत्र में जापान से उज्ज्वल छवि दुनिया में किसी और देश की नहीं है। परमाणु हमले का भुक्तभोगी देश होने के नाते उसने न सिर्फ परमाणु हथियारों से हमेशा दूरी बनाए रखी, बल्कि वैसे देशों से भी उसने रिश्ते नहीं रखे, जिसका इस मामले में रिकॉर्ड खराब है। भारत ने बेशक 1998 में आखिरी बार परमाणु परीक्षण किया था, पर परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह देशों के सामने उसने आगे और परीक्षण न करने का आश्वासन दिया है। यह भारत की बढ़ती आर्थिक ताकत और परमाणविक क्षेत्र में उसके साफ-सुथरे रिकॉर्ड का ही नतीजा है कि एनपीटी और सीटीबीटी पर दस्तखत न करने के बावजूद अमेरिका उसके साथ परमाणु समझौता करता है, ऑस्ट्रेलिया अपना पूर्वाग्रह त्यागकर यूरेनियम आपूर्ति का फैसला करता है और जापान असैन्य परमाणु समझौता करने के लिए आगे आता है। दरअसल 1991 में उदार अर्थनीति लागू करने के बाद से ही जापान के साथ हमारे आर्थिक रिश्ते मजबूत होने शुरू हुए, क्योंकि जापान को भारत के रूप में एक बहुत बड़ा बाजार मिला। दिल्ली मेट्रो परियोजना में मदद करने के बाद टोक्यो ने अब दिल्ली-मुंबई इंडस्ट्रियल कॉरीडोर में भी निवेश का फैसला किया है। हालांकि यहां उसका सीधा विदेश निवेश मामूली ही है, लेकिन दोतरफा व्यापार को 2014 तक 25 अरब डॉलर करने का लक्ष्य रखा गया है, जो पिछले वित्त वर्ष में 14 अरब डॉलर था। जापानी प्रधानमंत्री की यात्रा का कूटनीतिक महत्व भी कम नहीं है। चूंकि योसोहिका नोदा चीन का दौरा खत्म कर यहां आए हैं, ऐसे में बीजिंग का रवैया स्वाभाविक ही परेशानी भरा है। वहां इस दौरे को लेकर दो तरह की प्रतिक्रियाएं हैं : एक पक्ष मानता है कि चीन को घेरने के लिए भारत और जापान एकजुट हो रहे हैं, जबकि दूसरा धड़ा थोड़ा संतुलित है, जिसमें जापान और भारत के साथ रिश्ता सुधारने की जरूरत बताई गई है। भारत और जापान चीन के खिलाफ किसी रणनीति में बेशक शामिल नहीं, लेकिन बीजिंग की वर्चस्ववादी छवि के कारण ही भारत और जापान विगत पांच वर्षों में ज्यादा करीब आए हैं। फुकुशिमा हादसे के बाद आपदा प्रबंधन से जुड़ी भारतीय टीम जापान पहुंची थी। जाहिर है, दोनों देशों के बीच दोस्ती का मजबूत होता रिश्ता एशिया-प्रशांत क्षेत्र में भारत के लिए एक संतुलनकारी स्थिति बनाता है।

बीजिंग की वर्चस्ववादी छवि के कारण ही ये दोनों देश पिछले पांच साल में एक-दूसरे के करीब आए हैं।

edit@amarujala.com

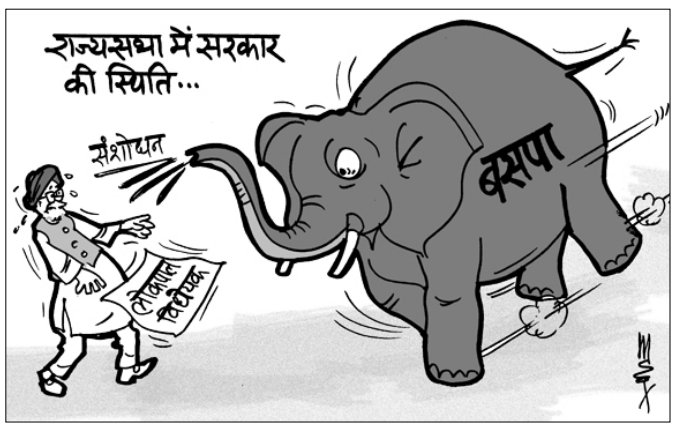

सच्चा ज्ञान

अंतर्यात्रा

सभी सिख गुरुओं ने मानव जीवन सफल बनाने के लिए तमाम दुर्गुणों का त्याग करने, सदाचार का पालन करने, भगवान की भक्ति करने और सेवा-परोपकार जैसे सत्कर्मों में लगे रहने की प्रेरणा दी है।

दशम गुरु गोविंद सिंह एक महान योद्धा के साथ संत-कवि भी थे। उन्होंने *अकाल स्तुति, जापु, ब्रह्म अवतार, चरित्रोपाख्यान* आदि रचनाओं का सृजन कर पूरे संसार में भक्ति, साधना व नैतिकता का संदेश दिया। गुरुजी ने भगवान को सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, अंतर्यामी, सर्वपालक, अनाथों का नाथ, मुक्ति का दाता जैसे शब्दों से विभूषित किया। *घट-घट के अंतर को जानत, भले-बुरे की पीर पछानत* ईश्वर हमारे तमाम दोषों व अच्छाइयों को देख रहा है। अतः हमेशा भला करते रहो। दुराचार-दुष्कर्मों से सदैव दूर रहो।

गुरु गोविंद सिंह ने भक्ति और ज्ञान, दोनों का महत्व प्रदर्शित किया है। उन्होंने लिखा, 'ज्ञान के बल पर ही हम ईश्वर को जान सकते हैं। ज्ञान के माध्यम से ही झूठे माया-मोह और आसक्ति से मुक्ति पाई जाती है। जो व्यक्ति सांसारिक सुखों व माया को ही सब कुछ मानकर उनके पाने के प्रपंच में लगा रहता है, भक्ति व कर्तव्यपालन से च्युत रहता है, उसका कल्याण कैसे होगा?' वह लिखते हैं, *कामना अधीन काम, क्रोध में प्रबीन। एक भावना बिहीन कैसे भेटै परलोक सौ।* यानी, जो काम-क्रोध के अधीन रहता है, उसे परलोक में स्थान कैसे मिल सकता है।

गुरु गोविंद सिंह धर्म को सर्वोपरि महत्व देते हुए धर्म की रक्षा के लिए सभी को संघर्ष करते रहने की प्रेरणा दिया करते थे।

शिवकुमार गोयल

आज का बयान

जब सचिन ने क्रिकेट खेलना शुरू किया, तब मेरा जन्म नहीं हुआ था, पर उनके खिलाफ गेंदबाजी करना और उनके बल्लेबाजों पर सफलता पाना अविश्वसनीय है।

- जेम्स पैटिनसन

बाकी ने कहा

भ्रष्टाचार-विरोधी आयोग के अध्यक्ष द्वारा आम लोगों से सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार की जानकारी देने का आह्वान करना सुखद है। पर ध्यान रखना होगा कि इससे कोई निजी लाभ न उठा पाए।

- द डेली स्टार, बांग्लादेश

खुली खिड़की

द वर्ल्ड फैक्टबुक

द वर्ल्ड फैक्टबुक ने अपनी सूची में लोकपाल विधेयक के लिए आंदोलन करने वाले सामाजिक कार्यकर्ता अन्ना हजारे एवं उनके संगठन इंडिया एगेंस्ट करप्शन को देश के राजनीतिक दबाव समूह में शामिल किया है, जिसमें आरएसएस, बजरंग दल एवं विश्व हिंदू परिषद् जैसे संगठन पहले से हैं।

द वर्ल्ड फैक्टबुक दरअसल अमेरिकी खुफिया एजेंसी सीआईए द्वारा जारी की जाती है, जो दुनिया भर के 262 देशों के इतिहास, लोग, सरकार, अर्थव्यवस्था, भूगोल, संचार, परिवहन, सेना और अंतरराष्ट्रीय मुद्दों से संबंधित जानकारियां मुहैया कराती है। यह काफी लोकप्रिय है। इसमें दुनिया के कई महत्वपूर्ण देशों के नक्शे, झंडे, संदर्भ सूची, विभिन्न देशों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारियां आदि होती हैं।

विभिन्न स्रोतों से सीआईए के पास जो जानकारियां इकट्ठा होती हैं, उनका मूल्यांकन और व्याख्या करके अंतिम खुफिया निष्कर्ष निकाला जाता है, फिर उसे अमेरिकी नीति-निर्माताओं को मुहैया कराया जाता है। ये अंतिम खुफिया निष्कर्ष तीन तरह के होते हैं-बुनियादी, सामयिक और अनुमानित। वास्तव में फैक्टबुक की रचना वार्षिक जानकारियों और नेशनल इंटेलिजेंस सर्वे के अद्यतन संग्रह के रूप में हुई। पहला वर्गीकृत फैक्टबुक अगस्त, 1962 में प्रकाशित हुआ, जबकि पहला अवर्गीकृत *फैक्टबुक* जून, 1971 में। 1975 से *फैक्टबुक* को अमेरिका के सरकारी मुद्रण कार्यालय से सार्वजनिक खरीद के लिए जारी किया गया।

1980 से *फैक्टबुक* लगातार प्रकाशित हो रहा है। 1981 में इसका नाम बदलकर *द वर्ल्ड फैक्टबुक* कर दिया गया है, जिसमें 195 देशों को 225 पृष्ठों में समाहित किया गया था। 1997 से इसका इंटरनेट संस्करण भी जारी कर दिया गया। दिलचस्प है कि *द वर्ल्ड फैक्टबुक* की आवरण पृष्ठ हर वर्ष एक नए डिजाइनर से तैयार करवाई जाती है, ताकि वह अनूठा और नूतन होने के साथ-साथ वर्ल्ड फैक्टबुक के मिजाज को भी दर्शाए।

पत्र

आरक्षण या धोखा

विधानसभा चुनावों से ठीक पहले अन्य पिछड़ा वर्ग में अल्पसंख्यक आरक्षण के कोटा की बात मुसलिम समुदाय को मूर्ख बनाने की कोशिश है। क्योंकि सरकार ने मुसलिम समुदाय की सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक स्थिति में सुधार के सुझाव देने वाली सच्चर कमेटी की सिफारिशों को अब तक ठंडे बस्ते में डाल रखा है।

अब्दुल हक खां, कासगंज

लोकपाल में आरक्षण

लोकपाल में अल्पसंख्यक आरक्षण का कदम जन कल्याण से अधिक राजनीतिक मंशा से प्रेरित लगता है। मुसलमानों की सामाजिक और शैक्षणिक स्थिति सुधारने के बजाय उन्हें आरक्षण का लॉलीपॉप देना गलत है। जनता को इस वोट बैंक की राजनीति से बचना होगा।

अंकित द्विवेदी, ललितपुर, उत्तर प्रदेश

इबारत

पीड़ा अस्थायी होती है,
लेकिन हिम्मत हार जाना
स्थायी होता है।

- लैंस आर्मस्ट्रांग

रसूखदारों का इलाज

नुक्कड़

यदि सरकारी अस्पताल नहीं होते, तो रसूखदार अपराधियों का क्या होता? वे कहां जाते बेचारे सिवाय जेल के। सरकारी डॉक्टरी में पैसा तो है नहीं, फिर भी सरकारी अस्पतालों में नौकरी के लिए डॉक्टर लगे रहते हैं, तो कारण यही है कि ऐसे बीमारों को वे साफ-साफ बचा ले जाते हैं और अपनी पीढ़ियों का इंतजाम कर लेते हैं। क्या अजीब बात है कि ऑपरेशन करने या दवाई देने में तो फिर भी खतरा रहता है, मगर यहां नेचरोपैथी आजमाई जाती है और मरीज अपने-आप ठीक हो जाता है। अपराध के बाद अस्पताल में भरती मरीज की मौत का नमूना उपलब्ध इतिहास में तो नजर नहीं आता।

यह भ्रम बहुत दिनों से है कि सरकारी अस्पताल में गरीब मरीज का इलाज होता है। अब आप ही सोचिए, गरीब की जान घर में निकले या अस्पताल के गलियारे में, क्या फर्क पड़ता है। उसे तो हर हाल में मरना ही है, क्योंकि वह तो पैदा ही मरने के लिए होता है। जब उसके माथे पर यह लिखा है, तो डॉक्टर को क्या पड़ी है कि वह उसका ऑपरेशन कर ठीक करे। बगैर बीमारी के बीमार होने वाले लोग सरकारी अस्पतालों में 'फल-दूध' बांटने के बहाने भले ही आ जाएं, मगर इलाज के लिए तो सबसे महंगे अस्पताल में ही भरती होते हैं। गरीबों के लिए ये हमेशा जगह खाली रखते हैं, जमीन पर, गलियारे में!

जेल के रास्ते में सरकारी अस्पताल इसलिए बनाते हैं कि क्या पता, कब माननीयों को भरती कराना पड़ जाए।

वैसे तो ये लोग कभी झांकें भी नहीं इधर, मगर आ जाते हैं, तो सरकारी अस्पताल का महत्व पता चलता है कि देखो, कैसे बड़े-बड़े लोग इलाज कराते हैं यहां! इससे डॉक्टरों की काबिलियत के भी चर्चे होते हैं कि देखो, कोई बीमारी नहीं थी, फिर भी कुशल डॉक्टरों ने खोज भी की और जमानत होने तक ठीक भी कर दिया। ऐसी-ऐसी बीमारियों के नाम पता चलते हैं कि कमजोर दिलवाला अगर सुन ले, तो हार्ट-फेल से ही जान छोड़ दे।

जेल के रास्ते में सरकारी अस्पताल इसीलिए बनाया जाता है कि क्या पता, कब भरती कराना पड़ जाए। नहीं, वैसे आम कैदी के लिए तो जेल में ही दवा-दारू का इंतजाम रहता है, जो डॉक्टर के न होने पर भी मिल ही जाती है। मगर हर मरीज का इलाज एक जैसा तो नहीं हो सकता न! इसीलिए खास मरीजों के लिए जेल और सरकारी अस्पताल के दरवाजे हमेशा खुले रहते हैं। यानी इतनी तत्परता भी देखने को मिलती है कि अस्पताल पहुंच कर ही पता चलता है कि इन्हें क्या बीमारी होने वाली है! अगर इस बीच कोई नासमझ डॉक्टर जांचना भी चाहे, तो उसे हाथ नहीं लगाने दिया जाता...। क्या पता, ऐसी-वैसी कोई बीमारी निकाल दी, तो अस्पताल के बदले फिर से कहीं जेल न जाना पड़ जाए। जेल से ही चलती हैं सरकारी अस्पताल की सांसें!

प्रकाश पुरोहित